E-ISSN: 2706-8927
P-ISSN: 2706-8919
IJAAS 2019; 1(1): 158-161
Received: 19-05-2019
Accepted: 22-06-2019

ललित कुमार झा
इतिहास शिक्षक, डी0 ए0. वी0 पब्लिक स्कूल, चूनाभट्ठी, दरभंगा, बिहार, भारत

Corresponding Author:
ललित कुमार झा
इतिहास शिक्षक, डी0 ए0. वी0 पब्लिक स्कूल, चूनाभट्ठी, दरभंगा, बिहार, भारत

प्राचीन काल में मृद्भाण्ड कला के विकास का ऐतिहासिक अध्ययन

ललित कुमार झा

सारांश
पुरातात्विक महत्त्व के स्थलों की खुदाई से प्रकाश में आये टूटे–फूटे या पूरे के पूरे भाण्ड हमारी संस्कृति की पहचान है। इनका कोई एक तरह का निर्माण काल नहीं है और यही इनकी शैलियों में एक दूसरे से भिन्नता का मूल कारण भी है। कुम्भकारों को प्राचीन विश्व का एक ऐसा शिल्पी माना जा सकता है जिनके गढ़े जाये भाण्डों के उपर कभी तरह–तरह के प्रतीक चिन्हों और प्रकृति जगत की रूमानियत का प्राणवान अंकन किया गया था। प्राक् हड़प्पन काल की सस्कृतियों को प्रतिविम्बित करनेवाला एकमात्र साक्ष्य मृदभाण्ड ही है। यह शिल्प की कलात्मकता के साथ–साथ उसकी विभिन्न शैलियों का भी द्योतक कहा जा सकता है। थोडे से परिवर्तन के साथ इन्हीं शैलियों का अनुसरण सिन्धु सभ्यता के साक्षी बने भाण्डों के निर्माण में भी किया जाना प्रमाणित होता है। संस्कतियों में अनुकरण करते रहने की प्रवृति सतत् चलती रहती है इसीलिए यदि बाद वाली संस्कृति अपने पूर्व की संस्कृति के कुछ मामलों में अनुसरण करती है तो इसे लेकर हमें कोई आश्चर्य नहीं होना पाहिये। निश्चय ही सिन्धु सभ्यता और संस्कृति को उसकी पूर्वगामिनी संस्कृति ने सिन्धु सभ्यता के विध्वंस के चाहे जैसे भी कारण रहे हों पर शताब्दियो से इसकी विशिष्टताओं से यह उपमहाद्वीप जगमगाता रहा है। इसका प्रसार क्षेत्र बहुत ही व्यापक रहा है। ऐसे कई स्थल भी प्रकाश में आये हैं जहाँ कभी भौतिक जीवन का आरंभ इसी के पर्दापण के साथ हुआ था । यह भी पता चलता है कि ऐसे स्थलों पर नयी–नयी प्रौद्योगिकी का विकास कुछ शताब्दियों के अन्तराल से हुआ था। पजाब के रोपड़ जिले में हड़प्पन संस्कृति और चित्रित घूसर भाण्ड (पी0जी0 वेयर) वाली सस्कृति के बीच एक तरह का सम्पर्क बनता हुआ दिखायी देता है । धग्गर धाटी के काली बंगन की तरह यहाँ पहले–पहल हड़प्पन संस्कृति में रचे बसे लोगों ने अपनी बस्तियाँ कायम की थीं और उनका जब लोप हुआ तभी जाकर चित्रित घूसर भाण्ड का प्रयोग करने वाले लोगों का यहाँ पर्दापण हुआ था। इन दोनों ही तरह के साक्ष्यों का निष्कर्ष यही है कि इन स्थलों पर कुछ समय के लिए हड़पपन लोग आबाद हुए थे और फिर इनका विस्थापन उनलोगों द्वारा किया गया जिन्हें चित्रित घूसर भाण्ड का प्रयोग करने वाले तथाकथित आर्य कहा जाता है। लौह प्रौद्योगिकी का विकास भी इसी संस्कृति के विभिन्न स्तरों में हुआ था। इस प्रकार एक विशिष्ट मृदभाण्ड से जुड़ी यह संस्कृति 1500–500 ई0 पू0 के बीच विद्यमान थी।

मुख्य शब्दः प्राचीन काल, मृद्भाण्ड कला, एन0 बी0 पी0, विशिष्टता, आर्यो

प्रस्तावना
भारतीय इतिहास में छठी शताब्दी ई0 पू0 का विशेष महत्त्व है। जीवन की ऐसा कोई क्षेत्र नहीं जिसमें इस शताब्दी के दौरान विकास की अपार संभावनाओं लक्षित नहीं हुई हों। इस दृष्टि से गंगा के मैदानी क्षेत्र में उत्तरी काले पालिशदार (एन०बी0पी० वेयर) वाली सस्कृति के पर्दापण से मौलिक विकास का एक नया अध्याय शुरू हुआ । पुराविदों की यही धारणा रही है कि इस तरह की प्रौद्योगिकी का उन्मेष आर्यो के पूर्वी अभियान के फलस्वरूप हुआ था। यह विशिष्ट भाण्ड इसका भी सूचक है कि बिहार की समतली भूमि से जब आर्यो का जुड़ाव हुआ तो उससे एक नयी सांस्कृतिक चेतना भी पनपी थी । इस मृदभाण्ड में हम एक ऐसी तकनीक को प्रस्फूटित होते हुए देखते हैं जिसे आयों के मानसिक विकास का भी द्योतक कहा जाना चाहिए। यह मृदभाण्ड शिल्प के चरमोत्कर्ष का सूचक है। इसके निर्माता अपने पूर्वजों से कही ज्यादा सजगता और तकनीकी कौशल का परिचय दे रहे थे। सम्पूर्ण भारत में जहाँ कहीं भी मृदभाण्डों को गढ़ने का प्रमाण मिलता है उन सबसे अलग उत्तरी काले पालिशदार भाण्ड ही स्वदेशी उत्पाद के सर्वोत्तम उदाहरण कहें जा सकते है। यह संभावना व्यक्त की गयी है कि इस तरह की विशिष्ट तकनीक का उद्गम आधुनिक बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश के उन्हें क्षेत्रों में हुआ जहाँ आर्यो के प्रभाव को छाने में अभी ज्यादा समय नही व्यतीत हुआ था।

पुरातत्व हमारे सामने जिस तरह का साक्ष्य प्रस्तुत करता है उससे यही सिद्ध होता है कि आर्यो की भाण्ड कलांकिंवा उनके शिल्प का विकास बहुत पहले ही हो चुका था। इस कथन का आधार भी यही है कि उच्च गंगा के ऐसे मैदानी क्षेत्र जहाँ से एन0बी0पी0 स्तर से ठीक पहले चित्रित घूसर भाण्ड के नमूने मिले हैं वे आर्यों की परिष्कृत तकनीक के ही परिचायक कहे जा सकते है। यह मृदभाएड शिल्प कोई साधारण कोटि का नहीं है।

इसे आर्यो की अनवरत साधना का प्रतिफल कहना चाहिये। उपमहाद्वीप में अब तक के मिले भाण्ड के नमूनों में इसे जिस तपद ह या प्राप्त है वह ठोस सबूतों पर आधारित है। ऐसे संकेत है कि आर्यावर्त की पवित्र धरती पर आर्यो ने अपने आगमन के पूर्व ही इस अनुपम भाण्ड को गढ़ने की कला सीख ली थी ।

उच्च गंगा की तटवर्ती क्षेत्र से बिहार की मुख्य भूमि में एन0बी0पी0 वाले आर्य कुछ शताब्दियों के गुजर जाने के बाद ही उत्कृष्ट शिल्प से समन्वित एन0बी0पी0 जैसे भाण्ड को गढ़ना शुरू किया था। हमारे सामने ऐसे भी साक्ष्य है कि हस्तिनापुर में चित्रित घूसर भाण्ड का प्रयोग करने वालों के साथ ही काले ओपदार भाण्डों को गढनेवाले भी रहा करते थे। इसकी संभावना कुछ–कुछ बनती हुई दीखती है कि एन0बी0पी0 जैसे भाण्डों का निर्माण ऐसे ही लोगों के साझे प्रयास से शुरू हुआ था । शिल्प को निखारते रहने के प्रयास में उत्तरोत्तर वृद्धि देखी जा रही थी, एन0बी0पी0 के कुछ नमूनों को देखने से ऐसा ही लगता है।

एन0बी0पी0 के विस्तार क्षेत्र तुलनात्मक दृष्टि से बहुत ही ज्यादा है। उत्तर पश्चिम के तक्षशिला से लेकर उत्तर पूर्व में तामलुक और दक्षिण के अमरावती तक के भू–भाग में इस विशिष्ट भाण्ड के प्रयोग की परम्परा दीखती है। परन्तु बिहार से आगे जाने पर इसकी सुधड़ता और शिल्प में जहाँ अन्तर, दिखायी देता है वहीं इसके प्रकारों में भी न्यूनता बनी हुई है। बिहार के वैशाली और सोनपुर (गया), पाटलिपुरत्र और चिसान्दः से इसके नमूने भारी मात्रा में मिले है। स्पष्टतः एन०बी0पी0 के बहुरगी रूप की देखते हुए हमें इसके निर्माताओं को दाद देनी पड़ेगी। कभी चांदी जैसी दरमक तो कभी सुनहरी या गाढ़ी चमक लिए हुए काला और नीला रंग जिस पर भूरे रंग के धब्बे है, के भाण्ड के नमूने बना देते है कि इनके निर्माण के पीछे कितने तरह के प्रयोगों और अनवरत साधना की कड़ी जुड़ी हुई थी। वास्तव में चमकदार पालिश ही इस भाण्ड की खास विशेषता है। वैशाली के संग्रहालय में एन0बी0पी0 का एक ऐसा नमूना है जिसका रंग तो ताम्बई है पर चमक इतनी शानदार है कि तराशे हुए पत्थर को भी मात कर देती है।.

चित्रित घूसर भाण्ड (पी0जी0 वेयर) जैसा कि डा0 बी0 लाल का कहना है केवल अपने स्थान की मौलिकता को लेकर ही महाभारत कालीन भाण्ड के रूप में परिगणित होता है। उच्च गंगा के द्रोणी में केवल यही भाण्ड आर्यो का प्रतिनिधित्व करता है जबकि इस तरह की धारणा विवादों से सर्वथा मुक्त नहीं कही जा सकती । हमें इतना तो मानना होगा कि एन0बी0पी0 के अस्तित्व में आने के बहुत पहले ही इस विशिष्ट भाण्ड के सृजन की क्रियायें शुरू हो गयी थी। महाभारत के संदर्भो में उन महापुरूषों की गाथा वर्णित है जिन्होंने बहुतेरे प्रदेशों पर अधिकार करके साम्राज्य को स्वायित्त प्रदान किया जाय। यह इस बात का भी द्योतक है कि हस्तिनापुर राज्य के साथ पूर्वी भारत के लोगों का सामाजिक संबंध था। परन्तु चकित कर देनेवाला प्रसड्ग है कि पी०जी0वेयर का कोई भी नमूना पूर्वी उत्तर प्रदेश या इसी से सटे बिहार के कल ते प्राप्त नही हुआ है। अब ऐसी स्थिति को देखते हुए हमारी यह धारणा किश्ष विशिष्ट भाण्ड का जीवन अत्यन्त ही अल्पकालिक सिद्ध हुआ नहीं तो 5७ पी0 की तरह इसके नमूने पूर्वी उत्तर प्रदेश के विभिन्न मार्गों प्राप्त नहीं होते ।

वैशाली की खुदाई से एन0बी0पी0 के साथ पी0जी० वेयर के जितने भी. टुकड़े मिले हैं वे शिल्प और तकनीक की दृष्टि से हस्तिनापुर और अहिच्छत्रा के अवशेषों के समरूप नहीं है। यह बात भी कोई कम रोचक नहीं कि वैशाली के पी0जी०वेयर एन0बी0पी0 की तरह चमक लिये हुए है यद्यपि इसके ऊपर जो रंगीन धब्बे है वे पानीपत के नमूनों की तरह नहीं हैं। ये सारे उदाहरण इसी मान्यता के पोषक है कि एन0बी0पी0 वेयर के निर्माताओं का कुछ समय के जिए सम्पर्क पी0जी0०वेयर जैसे विशिष्ट भाण्ड को गढ़ने वाले लोगों से अवश्य हुआ था द्य एन0बी0पी0 में जिस तरह का शिल्प है उसकी प्रेरणा भी स्यात् इन्हीं लोगों से मिली थी, परन्तु ऐसे उदाहरण विरल ही कहे जायेंगे।

डा0 सीताराम राय रामायण और महाभारत की कथाओं के आधार पर .उह निष्कर्ष निकाला करते हैं कि मिथिला और गिरिव्रज (राजगीर) जैसे क्षेत्र राम लक्षण के पहले ही आर्य सभ्यता के ध्वज के नीचे आ गये थे । परन्तु महाकाव्यों की इस है. चना के आधार पर पी0जी०वेयर और एन0बी0पी0 वेयर के बीच के सांस्कृतिक संबंध कि किपित करना कठिन है द्य राजगृह के उत्खनित साक्ष्य यही संकेत करते है कि हु हा कक के प्रयोग काल से ही मानव बसाव का वास्तविक क्रम शुरू हुआ था। : मृद्भाण्ड के शिल्प को आर्यो ने ही शीर्ष पर पहुँचाया था। इस स्थान पर दाह संस्कार करने के बाद अवशेषों को सुरक्षित रखने की वह प्रकृति भी पनपी थी जिसे शतपथ के अनुसार आर्यो का आचार कहा जाता था।

वैशाली की खुदाई भी यही प्रमाणित करती है कि इतिहास प्रसिद्ध इस स्थान पर एन0बी0पी0 वेयर का प्रयोग करने वाले लोगों के साथ ही मानवीय बस्तियों के बसने का सिलसिला जारी हुआ था। एन0बी0पी0 के पहले के स्तर से श्याम लोहित पात्र के मिलते रहने से संभावना इसी की बनती है कि वैशाली (चक रामदास) चिरान्द सोनपुर (दक्षिण विहार) जैसे प्राचीन स्थलों पर कभी अनार्य लोगों के भी पांव जमे हुए थे। यहाँ इसका भी विचार किया जाना चाहिये कि जिन–जिन क्षेत्रों से एन0बी0पी0 के साथ श्याम लोहित भाण्ड के टुकड़े मिले है उनका एक तरह का सांस्कृतिक अवदान भी दीखता है। यह हो सकता है कि एन0बी0पी0 के पालिश की तकनीक श्याम लोहित पात्र के भाण्ड के निर्माताओं से सम्पर्क के बाद क्रमशः विकसित हुई थी । इन सारे के सारे अनुमानों का मूल मंत्र यह है कि बिहार को आर्याकृत करने में कहीं न कहीं एन0बी0पी0 के प्रयोग कर्त्ताओं की ही भूमिका सर्वाधिक रूप से निर्णायक रहीं ।'

पुराविदों की बिरादरी मे कुछ का यह मानना है कि महाभारतकालीन मगध में एन0बी0पी0 का व्यवहार बदस्तूर जारी था पर यह परिकल्पना कि पी0जी0 पैयर और एन0बी0पी0 दोनों ही समकालिक भाण्ड थे कथमपि समीचीन नहीं है। दाचित् ऐसा ही होता तो दोनों एक ही स्तर से प्राप्त होते। वस्तुतः ये दोनों शैलियों के का जहाँ से मिले हैं वहाँ इनकी स्थिति एक जैसी नहीं है। पी0जी0वेयर के प्रसार क्षेत्र एन0बी0पी0 उपरी स्तर से ही सम्बद्ध दीखता हैं, खासतौर पर ऐसे विशिष्ट क्षेत्र लब्हें इसका उद्गम कहा जाता रहा है द्य विचार का एक पक्ष यह भी है कि एन0बी0पी0 ताहे जिस किसी क्षेत्र में प्रचलित क्यों न हुआ हो वहाँ भी पी0जी0वेयर का कोई स्थायी प्रभाव नहीं दिखायी देता। अब इसके आधार पर हमारी तो यही धारणा बनती है कि यह विशिष्ट भाण्ड अपने ही मूल स्थान से लुप्त हो गया। (उच्च गंगा का तटवर्ती क्षेत्र) विलोपन की यह स्थिति बहुत संभव है कि एन0बी0पी0 वेयर के अस्तित्व में आने के बहुत पहले ही प्रकट होने लगी थी।.

बिहार के एन0बी0पी0 भाण्ड वाले स्तर के नीचे जिस तरह का सांस्कतिक जमाव है वहाँ उन भाण्डों से प्रतिबिम्बित है जो अपेक्षाकृत कमजोर, रूखड़े और निर्माण की अटपटी तकनीक से युक्त है। यह भी आश्चर्य में डाल देनेवाली बात है कि प्राक एन०बी0पी0 स्तर से मिले भाण्ड अवशेषों की सख्या अत्यन्त ही न्यून है। राजगह की खुदाई तो यही संकेत करती है कि यहाँ एन0बी0पी0 से पहले कोई दूसरा भाण्ड शिल्प प्रचलन में था ही नहीं। इक्के दुक्के मिले टुकड़े मोटे लाल रंग के और रूखड़ी सतह वाले है। इसका शिल्प अत्यन्त ही भद्दा है। पुराविदों ने यह निष्कर्ष स्थापित किया है कि इस तरह के भाण्ड किसी पूर्व नियोजित शिल्प की परम्परा से जुड़े हुए नहीं है। चूँकि ये बुरी तरह क्षतिग्रस्त है अतः इनके आकार का निर्धारण भी नहीं किया

जा सकता। एक शब्द में कहें तो सोनपुर, चिरान्द, और वैशाली में एन0बी0पी0 के स्तर से नीचे वाले भाण्ड किसी भी दृष्टि से ठीक नहीं है। ये सारी परिस्थितियाँ इसी बात की सम्पृष्टि करती है कि उस काल के भाण्ड निर्माताओं के पास तकनीक के नाम कुछ नहीं था। निरन्तर अभ्यास से जिस तकनीक को हासिल किया गया उसे कुछ कुछ 3 अक लोगों प्रस्तुत गया।

एन0बी0पी0 जैसे महनीय शिल्प से युक्त भाण्ड से प्रचलन को लेकर पुराविद् एफ जैसी सहमति नही दिखाते। थोड़ी देर के लिए यह मान भी लें कि आर्यो के आगमन के बहुत बाद जाकर यह भाण्ड अपने अस्तित्व में आया तो इससे कई तरह की विसंगतियाँ पैदा होंगी। हम यह परिकल्पना भी करें कि बिहार आगमन के बाद ही आर्यो ने इस भाण्ड को गढ़ा तो उनके पास कुछ ऐसी तकनीक अवश्य होगी जिसका प्रदर्शन कभी पी०0जी0वेयर वालों ने अहिच्छत्रा और हस्तिनापुर में अपने विभिन्न उत्पादों के माध्यम से करने में सफलता पायी थी। ऐसी संभावना है कि आर्यो के पूर्वी अभियान पर निकलने के पहले यह तकनीक अपने पूरे निखार में थी द्य राजगीर में प्राक् एन0बी0पी0 स्तर से कठोर सतह के भाण्डों का मिलना यह प्रमाणित नहीं करता है कि पी0जी0वेयर से जुड़े लोगों की तकनीक इस सीमा तक चौपट हो गयी थी।

वैशाली, राजगीर आदि स्थलों पर मानवीय बस्तियाँ उन्हीं लोगों द्वारा बसायी गयी थीं जिन्होंने कभी एन0बी0पी0 जैसे अद्भुत भाण्ड बनाकर एक सर्वथा नूतन संस्कृति का जय घोष किया था। ये कोई और नहीं बल्कि आर्य थे। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह कि बिहार में यदि एन0बी0पी0 के साथ ही आर्यो का आगमन हुआ रहता तो इसके स्तरोंसे किसी और भी भाण्ड के अवशेष मिले रहते और उनके ऊपर या तो पी0जी0वेयर की या एन0बी0पी0 की तकनीक का कुछ न कुछ असर जछर होता...एण्ड रेड) पात्रों की बनावट और उसके आकार–प्रकार उपर जिस तरह का निखार ठीखता है उसे कहीं न कही एन0बी0पी0 के निर्माताओं से बने संबंध की ही पुष्टि होती है।

अब तक बिहार के जिन स्थलों से एन०बी6पी0 के नमूने मिले हैं उनमें बलिराजगढ़, बोधगया, बक्सर चिरान्द (सारण), दरभंगा, पूर्णियां, गिरियक, पटना शंगेर, नाथनगर सोनपुर (गया), वैशाली, मुजफ्फरपुर (कटरा) आदि विशेष रूप से चर्चित है। भाण्डों के आकार प्रकार में इतनी विविधता है कि इनका भारी मात्रा मं छ्वहत होने से इन्कार नहीं किया जा सकता। तश्तरियों, कटोरे, हांडी, सुराही, टक्कन, पीने का पात्र, आधार वाले भाण्ड, और टोंटीदार भाण्ड– एन0बी0पी0 के वे उत्कृष्ट उत्पाद है जो आश्चर्य में डाल देते है। बिहार में टोंटीदार को छोड़ इसके शेष नमने मिला करते है।

हमारे सामने यह विषय भी विवेचनीय है कि प्राचीन पाली साहित्य (विनय और सुत्तपिटक के अपेक्षाकृत प्राचीन भाग) किसी न किसी रूप में एन0बी0पी0 से सम्बद्ध है या नही। यह सभी जानते है कि इस तरह का भाण्ड अपने काले ओपदार पालिश, सुधड़ता और मजबूती के लिए कभी सारे भारत में प्रसिद्ध था। हम इसे वास्तविकता से परिचित है कि साहित्यिक और पुरातात्विक सा्ष्यों के बीच वाली लुप्त कड़ी को जोड़ने का अभी तक कोई सार्थक प्रयास नहीं हुआ है । चौकाने वाली बात यह भी है कि एन0बी0पी0 के कुछ नमूने ताम्बे के तार से की गयी मरम्मत का स्पष्ट संकेंत कर देते है। रूपड़, वैराट, उज्जैन और कुम्रहार के कुछ नमूनी में यही देखा गया है । इससे रही निष्कर्ष निकला कि ये पालिशदार भाण्ड गूल्यवरा तो थे ही अन्य की अपेक्षा टेकाउ और कलात्मक भी थे, इसीलिए इनके रख–रखाव पर विशेष ध्यान औचित्य बनता था।

विनय विटक प्रधान रूप से भिक्षुओं के आचार से संबंधित नियमों का. उह्वश देता है। इसी के एक नियम के तहत पाँच जगह से कम टूटे हुए पात्रों का त्याग बडी करने का आदेश भिक्षुओं को दिया गया है। पातिभोक्ख के नियम की बात करें तो चाहे मिट्टी के ही क्यों न बने हों उनका उपयोग अधिकतम सीमा तक किया जा सकता था। पॉच जगह से कम टूटे भाण्ड का त्याग नहीं करने के पीछे स्यात् यही धारणा होगी कि ये मूल्यवान हुआ करते थे और दूट–फूट की स्थिति में भी उनकी मरम्मत करायी जा सकती थी। इस प्रकार पातिभोक्ख जिस तरह के भाण्ड का निर्देश देता है उसका थोडा–बहुत सामंजस्य एन०बी0वैयर से दीखता तो है पर विस्तृत सूचना के अभाव में इससे ज्यादा कुछ और नहीं कहा जा सकता पर बुद्ध के काल में जिस तरह के भौतिक विकास का परिदृश्य बना उसमे मृद्भाण्डों के निर्माण की एक अलग महत्ता थी। कुरकाः अकेले ही इस काम को नहीं करता था बल्कि उसका अन्तेवासी भी साथ–साथ रहता था द्य ये दोनों ही चिकनी और अकी तरह घोंटी हुई मिट्टी से जैसा चाहते पात्रों का निर्माण कर सकते थे। बहुमुखी योग वाले भाण्डों की हर जगह पूछ थी। ग्राहकों की मांग या किसी खास प्रयोजन को देखते हुए कुम्भकार कभी कुम्भी तो कभी सरावक की गढ़ाई करते जा रहे थे। भिक्षु कुछ खाएं किस्म के भाण्डों का ही उपयोग कर सकते थे। निश्चय ही कम्भकारों के शिल्प में विविधता देखने को मित्र रही थी द्य कटोरे, सुराही, घड़े, तो कभी छोटे–छोटे भाण्डों के निर्माण में उनकी खास रूचि बनी हुई थी। इनकी कार्यशालायें में गांव या नगर के बाहर स्थापित थी।ः भाण्ड बनने के पहले मिट्टी और गोबर का प्रबंध होता थाद्य पानी डालकर अच्छी तरह घुटाई करने के बाद जब मिट्टी के लौंदे चाक पर रखे जाते थे तो कम्भकार की अंगूलियाँ बड़ी तेजी से घूम–घूम कर भाण्डों का सृजन करने लग जाती थीं।धूप में सूखने के बाद भाण्ड को आवे में पकाया जाता था। इसके बाद ही ये ग्राहकों के लिए सुलभ हो पाते थे। कृम्भकारों में कुछ तो ऐसे पहुँचे हुए शिल्पी थे कि भाण्डों के ऊपर तरह – तरह की चित्रकारी का काम भी किया करते थे। इससे उनकी मोहकता में वृद्धि हो जाती थी और वे मूल्यवान भी हो जाते थे। यह बात प्रमाणित है कि कुम्भकार भारी मात्रा में भाण्डों का निर्माण कर रहे थे, कुछ के यहाँ अतिरिक्त उत्पादन के मद्देनजर मजदूर भी रखे जाते थे। चाक पर पूरे दिन अंगूली फेरते रहने के कारण कुम्भकार को भोजन और आराम का समय भी नहीं मिला करता था । मिट्टी लगे हाथ से रूखा – सूखा खा लेना ही उसके लिए काफी था। यह थी कार्य के प्रति उसकी निष्ठा और मर्पण की भावना ।

कुम्भकार उपयोगी भाण्डों का निर्माता होने के साथ दृ साथ खिलौनों को भी गढ़ाई का काम कर रहे थे द्य इसमें शिल्प का निचोड़ समाया रखता था। इसकी बिक्री से उन्हें अच्छी आय हो रही थी द्य मज्झिमनिकाय हमें बताता है. कि अभिभावक अपने घर के बच्चों के लिए स्वरूचि के अनुसार खिलौने बनवा रहे थे। उनके ऊपर रंग–रोगन से लेकर रूपाड्डन तक के काम में कुम्भकारों के शिल्प ज्ञान की ही झलक दिखायी देती थी।

निष्कर्ष

प्राचीन भारत में मृदभाण्ड उत्पादन तकनीक और शिल्प इन दोनों ही दृष्टि से बेजोड़ हुआ करता था। इनकी लोकप्रियता भी शिखर को छूने लगी थी। गरीब के घर का भोजन हांडी और परियोग में बनता था, यह सादगी का परिचायक था । बौद्ध भिक्षु भी ऐसे ही मिट्टी के बर्तनों में भोजन पका कर खा सकते थे ।

संदर्भ

1. संकलिया, 1969, प्री–हिस्ट्री एण्ड प्रोटो हिस्ट्री इन इण्डिया, एंश्येंट इण्डिया नं0 09, पृ. 96
2. एंश्येंट इण्डिया, 1969, नं0 11, वॉ0 33, पृ. 11
3. राय, सीताराम, 1978, दि नादर्न ब्लैक पॉलिश्ड वेयर इन बिहार, पाटरीज इन एश्येंट इंडिया, पृ0 167

4. इण्डियन आर्कियोलॉजी, 1961, एरिन्यू, पृ. 57
5. एंश्येंट इण्डिया, 1969, पृ. 70
6. अल्तेकर एण्ड मिश्रा, 1966, रिपोर्ट ऑन कुम्हरार एक्सकवेशन, पृ. 192